स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी नाटकों में बदलते जीवन मूल्य

डॉ अनिल कुमार
सहायक प्रोफेसर
वैश्य कॉलेज भिवानी।

Received: May 24, 2018 Accepted: June 29, 2018

ABSTRACT *भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त युग विशेष बौद्धिक जागृति का युग है। आज का व्यक्ति सचेत, जागरूक ओर सामाजिक है। उसे अनुचित–उचित तथा भले–बुरे का ज्ञान है। आधुनिक शिक्षा और विज्ञान ने मनुष्य को अधिक तर्कशील, विवेकी, सन्देही तथा जागरूक बना दिया है। उसकी भाषा में "कैसे" और "क्यों" जैसे प्रश्न सूचक शब्दों को प्रयोग होने लगा। यह सत्य है कि दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही उसकी तर्कशीलता ने उसे सन्देही बना दिया है। और उसके जीवन को असहज बना दिया है।*

विवेकहीन, लाचार और अशिक्षित व्यक्ति ही किसी बात को बिना तर्क के मान सकता है। लेकिन बौद्धिक रूप से जागरूक व्यक्ति उसे ज्यों का त्यों मानने के स्थान पर तर्क उसकी उपयोगिता, अनुपयोगिता, लाभ–हानि आदि की दृष्टि से परख कर ही अपनायेगा। यहीं कारण है कि हूमारा समाज इतनी उन्नति कर रहा है । परिवर्तन ने बौद्धिक विकास ने, मानव–जीवन के चिरकाल से चले आ रहें मूल्यों पर भी प्रश्नचिन्ह लगा दिये है। सदियों से चले आ रहे "मूल्य" तर्क की टकराहट से टुटते जा रहें हैं। नये मूल्यों की स्थापना हो रही है। विवेक ही मूल्य की दृष्टि हैं।

Keywords:

मूल्यः स्वरूप विवेचन

संस्कृत की मूल "धातु" में "यत्" प्रत्यय लगाने से बने शब्द "मूल्य" का सामान्यतः अर्थ वस्तु के विनिमय में दिया जाने वाला धन या कीमत है।[1]

प्रायः मूल्य शब्द का अर्थ इच्छित या इष्ट से समझा जाता है। "मूल्य" शब्द अग्रेंजी के शब्द "वेल्यू" का पर्याय है, जिसका प्रयोग प्रायः वस्तु और व्यक्ति के परस्पर सम्बंधों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है।

डॉ0 विश्वम्भरनाथ उपाध्याय "मूल्य" को न तो पूर्णतः वस्तुगत मानते है और न ही पूर्णतः व्यक्तिगत मानते है। वे उन्हे वस्तु ओर व्यक्ति के परस्पर सम्बन्धों क्रिया–प्रतिक्रियाओं, संघर्षो तथा संगतियों का फल मानते है।[2]

गोविन्द चन्द्र पाण्डेय "मूल्य" को मनुष्य के विकासशील जीवन का लक्ष्य और उसकी उपलब्धि मानते है।[3] जीवन मूल्यों की चर्चा में "लोकहित" को ही सर्वोच्य मूल्य स्वीकार करते है। "मूल्य" में जीवन की सर्वांगीणता को निहित मानते है। लोक कल्याण की भावना में ही स्वकल्याण भी समाविष्ट है।[4]

"मूल्यों" से ही ज्ञात होता है कि हम कितना महत्वपूर्ण जीवनयापन कर रहे हैं। प्रत्येक समाज में जीवन ओर व्यवहार के प्रति कुछ धारणाएँ होती हैं। यहीं धारणाएँ स्थित होकर मूल्य बन जाती है।

हेमेन्द्र पानेरी "किसी वस्तु या विचार के प्रति अनुकूल धारण तद्विषयक मूल्यों को जन्म देती है।[5]

"मूल्यों" के विषय में भी विभिन्न विद्वानों ने समय–समय पर अपने विचार प्रकट किये है– भारतीय विचारधारा के अनुसार "पुरूषार्थ ही जीवन–मूल्यों का पर्याय है"।[6] पुरूषार्थ का शाब्दिक अर्थ है– प्रत्यन अर्थात् जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाने वाला प्रयत्न ही पुरूषार्थ है।

मनुष्य का स्वभाव है– सृजन करना। अपने सृजन में ही "मूल्य" की महत्वपूर्ण खोज करता है। जो वस्तु अत्याधिक महत्वपूर्ण होगी वह मूल्यवान होगी। मानव मूल्य हमेशा आदर्श होते है। यथार्थ में उन्हे कभी ग्रहण नही किया जाता।[7]

मूल्य वास्तव में एक धारणा है। धारणा अपनी प्राथमिक अवस्था में तो व्यक्तिगत ही होती हैं। धीरे–धीरे अन्य सामाजिकों द्वारा मान्यता प्राप्त कर यही धारणा एक सामाजिक धारणा बन जाती है। रूढ़ होकर यह धारणा "मूल्य" बन जाती है।

हिन्दी नाटक तथा बदलते जीवन मूल्य–

समय और परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ–साथ मूल्यों में भी परिवर्तन आया है। पहले हमारा समाज धर्म पर आश्रित था। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र किसी न किसी रूप में धर्म से सम्पृक्त रहता था। आज धर्म के प्रति हमारी रूचि नहीं रही है। वैज्ञानिकता, यान्त्रिकी, बौद्धिकता आदि ने हमें इतना अधिक व्यस्त बना दिया है कि उसके पास धर्म या भगवान नाम की किसी सत्ता को याद करने का समय ही नहीं रह गया है। आज व्यक्ति के भले–बुरे का ध्यान पहले समाज का बाद में रखा जाता है। व्यकि के कारण ही समाज की सत्ता है। इसलिए व्यक्तिवाद का जन्म हुआ है।

प्रेमचन्द के "गोदान" का "होरी" सामाजिक रीतियों को निबाहते–निबाहते भुखा ही चल बसा। यहाँ व्यक्ति की सत्ता समाज के लिए है। जबकि आज का व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता है। "आषाढ" का एक दिन "मोहन राकेश" की मल्लिका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। उसके कारण समाज है। वह समाज की परवाह नहीं करती। तभी अपनी माँ सामाजिक अपवाद की घोषणा के वि☺ कहती है–"क्या कहते है वे? क्या अधिकार है उन्हे? कुछ भी कहने का। मल्लिका का जीवन उसकी अपनी सम्मति है। वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसी को उस पर आलोचना करने का क्या अधिकार है?[8]

"लहरों के राजहंस" के नन्द और सुन्दरी कहते हैं–"हमारे अन्तरंग जीवन को लेकर उन्हे कुछ भी सोचने का अधिकार नहीं है।"[9]

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समय के परिवर्तन के साथ ही हमारी मान्यताएँ भी बदली है। विकास के लिए परिवर्तन ही अनिवार्य है। मानवता के विकास के लिए आज का मानव पुरानी रूढ़ियों को जिन्होने हमारे विकास मार्ग को अवरूद्ध कर रखा था, तोड़ना आरम्भ किया है। स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी नाटकें में धर्म, नीति, पाप–पुण्ड आदि के सम्बन्ध में बदलते मूल्यों का पर्याप्त चित्रण मिलता है।

"दर्पन" लक्ष्मीनारायण लाल की पूर्वी बौद्ध भिक्षुणी है। भिक्षणी होने पर वही दुःखी है िकवह संसार से कट गई है। बौद्ध धर्म के इतने अधिक बन्धन तथा विकटताएँ उसे कुंठित कर देती है, इसलिए वह मठ से भागकर राख में मिले सुजान के साथ आकर उसी के घर में रहना आरम्भ कर देती है।[10]

"अलग–अलग रास्ते" उपेन्द्रनाथ अश्क की रानी अपने लालची पति के घर जाने से मना कर देती है । इस पर उसका पति उसे धिक्कारता हुआ ब्राह्मण तथा पति धर्म की याद दिलाता है....."तुझे एक ब्राह्मण ने पाला है तु किसी चण्डाल के घर पैदा नहीं हुई है।"[11]

उसके पिता की धारणा परम्परागत वर्ण भेद तथा धर्म की मान्यता पर आधारित है।

"प्रकाश स्तम्भ" "हरिकृष्ण प्रेमी" में बाप्पा, यवन कन्या हमीदा से विवाह करना चाहते हैं लकिन नागदा हमीदा को विजातीय तथा विधार्मिणी मानते हैं। इसलिए वह बप्पा को यह विवाह करने की स्वीकृति नहीं देते है"– "मेरे लिए संसार में केवल एक ही धर्म है मानवता।[12] "साँपों की सृष्टी"

"हरिकृष्ण प्रेमी" को कमलावती किसी भी धर्म को बुरा नहीं मानती लेकिन ऐसा धर्म जिसमें केवल दुराचार होता है। वह उसकी दृष्टि में हीन है। इस्लाम धर्म की कुरीतियों को स्पष्ट करते हुए कहती है– "वास्तव में देखा जाए तो कोई धर्म बुरा नहीं हैं। बुरे है उसका गलत अर्थ करने वाले।"[13]

यही कारण है कि समाज के लोगों ने ही सड़े–गले रिति–रिवाजों का चोला उतार फेंका है। आज की पीढ़ी ने ये सब रूढ़ियों को तोड़कर नये मानदण्ड स्थापित कर दिये हैं। दिन–प्रतिदिन लोगों की धारणाओं के साथ–साथ मूल्यों में भी परिवर्तन हो रहा है। आज पुरानी मान्यताएँ टूटती जा रही है। जो नई मान्यताएँ है वे तर्क की कसौटी पर कसी जाती है। आत तर्क का मूलाधार मानवता हैं। यदि कोई मूल्य मानव–हित से परे है उसे मूल्य नहीं माना जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. बृहत हिन्दी कोश, स0 कालिका प्रसाद, ज्ञानमण्डल लि0, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 2020 वि0 पृ0 10981
2. डॉ0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, जलते और उबलते प्रश्न, पृ0 23
3. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, मूल्य मीमांस, पृ0 30
4. आचार्य विनयमोहन शर्मा, आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य, पृ0 60
5. योगेन्द्र सिँह, माध्यम पत्रिका, जनवरी, 1969, पृ0 44
6. डॉ0 हुकुम चन्द, आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य, पृ0 17
7. गिरिजा कुमार माथुर, लहर पत्रिका, सितम्बर, 1960 पृ0 43
8. मोहन राकेश, आषाढका एक दिन, पृ0 12
9. मोहन राकेश, लहरों के राजहँस, पृ0 81
10. लक्ष्मी नारायण लाल, दर्पण, पृ0 81
11. उपेन्द्रनाथ अश्क, अलग–अलग रास्ते, पृ0 111
12. हरिकृष्ण प्रेमी, प्रकाश स्तम्भ, पृ0 115
13. हरिकृष्ण प्रेमी, साँपों की सृष्टि, पृ0 47